13. एक दिन का मेहमान

निर्मल वर्मा

लेखक परिचय

'परिन्दे' संग्रह की कहानियों की समीक्षा करते हुए नामवर सिंह ने कहा था कि, "स्वतंत्रता या मुक्ति का प्रश्न, जो समकालीन विश्व साहित्य का मुख्य प्रश्न बन चला है, निर्मल की कहानियों में प्राय: अलग-अलग कोण से उठाया गया है।" नामवर सिंह ने यह टिप्पणी उस समय की थी जब निर्मल वर्मा वामपंथी विचारधारा से बाकायदा जुड़े हुए थे। जब उनका कहानी संग्रह 'परिन्दे' 1960 में छपा तो नामवर सिंह ने 'परिन्दे' को 'नयी कहानी की पहली कहानी होने का गौरव प्रदान किया। लेकिन वे आज निर्मल वर्मा की कोई कहानी प्रासंगिक नहीं मानते। ऐसी स्थिति में उनको किसी खास विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में नहीं देखा जा सकता। वे कला और कलाकार की मुक्ति के पक्षधर हैं। यथार्थ उनके यहाँ प्रकट रूप में नहीं दिखाई देता। डॉ० वीरभारत तलवार के अनुसार, "निर्मल की कहानियों का अनूठापन मुख्यत: तीन बातों में है- काव्यात्मक भाषा, चमत्कारपूर्ण कल्पना और रहस्यात्मकता। यही तीन मुख्य विशेषताएँ हैं जो उन्हें 'नई कहानी' के दूसरे सभी कहानीकारों से और शायद हिन्दी की पूरी कथा-परम्परा से अलग करती हैं।"

निर्मल वर्मा की कहानियाँ यथार्थ के बाहरी रूप से आमतौर बचते हुए उसकी आंतरिकता की सूक्ष्म अभिव्यक्ति में ज्यादा रस लेती हैं। उन पर विदेशीपन के प्रभाव की भी बहुत चर्चा होती है। दरअसल, निर्मल वर्मा ने लम्बे समय विदेश में रहते हुए वहाँ के परिवेश, समाज, व्यक्ति और जीवन-पद्धति को काफी नजदीक से देखा है। यूरोपीय समाज, उसकी समस्याओं और अनुभूतियों को वह उसी सामाजिक परिवेश में देखते हैं। उस जीवन से उनका गहरा परिचय और कहीं एक हद तक आंतरिक लगाव है शायद इसलिए उनका पर्यवेक्षण अधिक सूक्ष्म और प्रामाणिक दिखाई देता है। अपनी कहानियों में विदेशी पृष्ठभूमि का इस्तेमाल वे उषा प्रियंवदा अथवा कृष्ण बलदेव वैद से हटकर करते हैं। उनके यहाँ न तो दो संस्कृतियों की संस्कारगत टकराहट है और न ही पश्चिमी स्थितियों का अपने परिवेश पर आरोप। वे पश्चिम को पश्चिम की तरह ही देखने के पक्षधर हैं। पश्चिमी समाज की अब, हताशा और अकेलापन निर्मल की कहानियों में जहाँ-तहाँ मौजूद हैं लेकिन उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे इन स्थितियों में किसी प्रकार के नैतिक हस्तेक्षप की कोशिश नहीं करते। इन कहानियों में निर्मल वर्मा को मानो पात्रों को नाम देने की जरूरत भी महसूस नहीं होती। 'एक दिन का मेहमान' कहानी में पति-पत्नी और बेटी भारतीय हैं। माँ-बेटी आदमी से अलग लंदन में रहती हैं और इनके बीच आत्मीय सम्बन्धों में पायी जाने वाली गरमी लगभग समाप्त हो चुकी

है। अतीत में घटी कुछ घटनाएँ इसकी पृष्ठभूमि में हैं। शायद इसीलिए आदमी और औरत की एक रात बिताने की सारी संभावनाएँ खत्म हो चुकी हैं। चौदह वर्ष की लड़की ने कभी हिन्दुस्तान की जमीन, वहाँ के समाज और रीति-रिवाज को नहीं देखा है। आदमी जिस हिन्दुस्तान को अपनी अटैची में बंद करके लाया है, औरत को उसमें कोई दिलचस्पी नहीं है।

निर्मल वर्मा कई अर्थों में नयी कहानी के विशिष्ट कथाकार हैं। उन्होंने नये-नये विषय क्षेत्र ही नहीं, निर्वाह की एक विशिष्ट भंगिमा और कहानी को एक सार्थक कलात्मकता प्रदान की है। दरअसल, निर्मल वर्मा की कहानियाँ जीवन की ऐकांतिक अनुभूतियाँ हैं जो अंतर्मुखी और व्यक्तिपरक होती हैं। समाज के स्थूल यथार्थ की ठोस वास्तविकताओं के चित्रण के विपरीत निर्मल वर्मा की चेतना निरंतर अकेले होते जा रहे व्यक्ति के अंतर्मन की अनुभूतियों की ओर मुड़ी है। उनकी कहानियों में एक मन:स्थिति, एक भावस्थिति उभरती है जिसकी गहराई में वे खुद डूबते और दूसरों को डुबाते हैं। उनकी भावस्थितियों में विविधता नहीं, एक उदास मन:स्थिति के अनेक पहलू होते हैं। आधुनिकता को उसकी चीख और आतंक के संदर्भ में निर्मल वर्मा ने अपनी कहानियों में अपेक्षाकृत व्यापक फलक पर चित्रित किया है। इसके फलस्वरूप कहानियों की परिपाटीग्रस्त शैली में बदलाव आ जाता है।

'एक दिन का मेहमान' में भारत के प्रति लड़की का उत्साह देखकर आदमी जब उसकी माँ से उसे कभी भारत न लाने की शिकायत करता है तो वह घनी पीड़ा के साथ कहती है - 'यदि उसका वश चले तो वह उसे कभी हिन्दुस्तान न जाने दे। '' सुलह-समझौते और मान-मनौवल की सारी कोशिशें बेकार हो जाती हैं। इस कहानी में अस्मिता की तलाश की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। नामवर सिंह का कहना है कि, "समकालीनों में निर्मल वर्मा पहले कहानीकार हैं जिन्होंने इस दायरे को तोड़ा है - बल्कि छोड़ा है, और आज के मनुष्य की गहन आंतरिक समस्या को उठाया है। '' वह दायरा है पुराने सामाजिक संघर्ष का धरातल, जो निर्मल के यहाँ नदारद है। निर्मल वर्मा के यहाँ चरित्र वातावरण, कथानक आदि का गहरा कलात्मक रचाव है, इसीलिए उनकी कहानियों में गहराई की अनुभूति होती है। वे बारीक अनुभूतियों के कलाकार हैं। अनुभूतियों को बोध कराने के लिए वे प्राय: उपमाओं का सहारा लेते हैं। इनकी उपमाओं में एक खास सांस्कृतिक परिवेश की कोमलता, नजाकत और सुरुचि सम्पन्नता है। उनकी कहानियों में वातावरण, परिवेश या प्रकृति सम्बन्धी वर्णन एक तरह की रूढ़िवादी प्रवृति का परिचय देते हैं। इसे 'मैनरिज्म' भी कहा जा सकता है। उजली धूप का टुकड़ा, चमकीली रात और उगी हुई घास आदि उपमाएँ उनकी कहानियों में लगभग एक ही तरह से व्यवहृत होती हैं। कहना न होगा कि उनकी संवेदनशील

दृष्टि महानगर के उच्च मध्यवर्ग के एक छोटे से तबके तक ही सीमित हो गई है। शायद वे चाहकर भी व्यापक जनसमुदाय की अनुभूतियों तक नहीं पहुँच सकते। 'एक दिन का मेहमान' कहानी भी इसी उच्च- मध्यवर्ग की जीवन स्थिति को उजागर करती है।

इस कहानी में आदमी औरत के साथ रहने को व्याकुल है। कैसी विडम्बना है कि जो सम्बन्ध के प्रति ईमानदार नहीं है वह सम्बन्ध बनाने के लिए लालायित है और जो ईमानदार है वह समझौते की प्रत्येक संभावना के प्रति दृढ़ और कठोर है। यह एक जटिल मानवीय स्थिति है। इस स्थिति से उत्पन्न होने वाले अकेलेपन को बेटी और भी तीव्र बना देती है। पति-पत्नी तो अपना एकांत चुनने के लिए स्वतंत्र हैं लेकिन उन दोनों की ओर मुखातिब बेटी के लिए तो उनका एकांत या अलगाव एक त्रासदी है। दरअसल यह कहानी अपने युग के प्रतीक की प्रतिबद्धता का खोखलापन उजागर करती है। मानव सम्बन्धों में आया ठहराव एक ठोस ऐतिहासिक-सामाजिक स्थिति का परिणाम है।

उसने अपना सूटकेस दरवाजे के आगे रख दिया। घण्टी का बटन दबाया और प्रतीक्षा करने लगा। मकान चुप था। कोई हलचल नहीं- एक क्षण के लिए भ्रम हुआ कि घर में कोई नहीं है और वह खाली मकान के आगे खड़ा है। उसने रुमाल निकालकर पसीना पोंछा, अपना एयर-बैग सूटकेस पर रख दिया। दुबारा बटन दबाया और दरवाजे से कान सटाकर सुनने लगा, बरामदे के पीछे कोई खुली खिड़की हवा में हिचकोले खा रही थी।

वह पीछे हटकर ऊपर देखने लगा। वह दुमंजिला मकान था-लेन के अन्य मकानों की तरह - काली छत, अंग्रेजी 'वी' की शक्ल में दोनों तरफ से ढलुआँ, और बीच में सफेद पत्थर की दीवार, जिसके माथे पर मकान का नम्बर एक काली बिन्दी-सा टिमक रहा था। ऊपर की खिड़कियाँ बन्द थीं और परदे गिरे थे। कहाँ जा सकते हैं इस वक़्त ?

वह मकान के पिछवाड़े गया-वही लॉन, फेंस और झाड़ियाँ थीं, जो उसने दो साल पहले देखी थीं, बीच में विलो अपने टहनियाँ झुकाये एक काले, बूढ़े रीछ की तरह ऊँघ रहा था। लेकिन गैराज खुला और खाली पड़ा था; वे कहीं कार लेकर गये थे, सम्भव है, उन्होंने सारी सुबह उसकी प्रतीक्षा की हो और अब किसी काम से बाहर चले गये हों। लेकिन दरवाजे पर उसके लिए एक चिट तो छोड़ ही सकते थे।

वह दुबारा सामने के दरवाजे पर लौट आया। अगस्त की चुनचुनाती धूप उसकी आँखों पर पड़ रही थी। सारा शरीर चू रहा था। वह बरामदे में ही अपने सूटकेस पर बैठ गया। अचानक उसे लगा, सड़क के पार मकानों की खिड़कियों से कुछ चेहरे बाहर झाँक रहे हैं, उसे देख रहे हैं। उसने सुना था, अंग्रेज़ लोग दूसरों की निजी चिन्ताओं में दखल नहीं देते, लेकिन वह मकान के बाहर बरामदे में बैठा था, जहाँ प्राइवेसी का कोई मतलब नहीं था; इसलिए वे निस्संकोच नंगी उन्मुक्तता से उसे घूर रहे थे। लेकिन शायद उनके कौतूहल का दूसरा कारण था; उस छोटे, अंग्रेजी कस्बाती शहर में लगभग सब एक-दूसरे को पहचानते थे और वह न केवल अपनी शक्ल-सूरत में, बल्कि झूलते-झालते हिन्दुस्तानी सूट में काफी अद्‌भुत प्राणी दिखायी दे रहा होगा। उसकी तुड़ी-मुड़ी वेशभूषा और गर्द और पसीने में लथपथ चेहरे से कोई यह अनुमान भी नहीं लगा सकता था कि अभी तीन दिन पहले फ्रेंकफर्ट की कान्फ्रेंस में उसने पेपर पढ़ा था। 'मैं एक लुटा-पिटा एशियन इमीग्रेण्ट दिखायी दे रहा हूँगा..... उसने सोचा और अचानक खड़ा हो गया - मानो खड़ा होकर प्रतीक्षा करना ज्यादा आसान हो। इस बार बिना सोचे-समझे उसने दरवाजा जोर से खटखटाया और तत्काल हकबकाकर पीछे हट गया -हाथ लगते ही दरवाजा खट से खुल गया। ज़ीने पर पैरों की

आवाज सुनायी दी - और दूसरे क्षण वह चौखट पर उसके सामने खड़ी थी।

वह भागते हुए सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आयी थी, और उससे चिपट गयी थी। इससे पहले वह पूछता, क्या तुम भीतर थी? और वह पूछती, तुम बाहर खड़े थे?-उसने अपने धूल-भरे लस्तम-पस्तम हाथों से उसके दुबले कन्धों को पकड़ लिया और लड़की का सिर नीचे झुक आया और उसने अपना मुँह उसके बालों पर रख दिया।

पड़ासियों ने एक-एक करके अपनी खिड़कियाँ बन्द कर दीं।

लड़की ने धीरे-से उसे अपने से अलग कर दिया, "बाहर कब से खड़े थे?"

"पिछले दो साल से।"

"वाह !" लड़की हँसने लगी। उसे अपने बाप की ऐसी ही बातें बौड़म जान पड़ती थीं।

"मैंने दो बार घण्टी बजायी-तुम लोग कहाँ थे?"

"घण्टी खराब है, इसीलिए मैंने दरवाजा खुला छोड़ दिया था।"

"तुम्हें फोन पर बताना चाहिए था- मैं पिछले एक घण्टे से आगे-पीछे दौड़ रहा था।"

"मैं तुम्हें बताने वाली थी, लेकिन बीच में लाइन कट गयी.... तुमने और पैसे क्यों नहीं डाले?"

"मेरे पास सिर्फ दस पैसे थे.... वह औरत काफी चुड़ैल थी!"

"कौन औरत?" लड़की ने उसका बैग उठाया।

"वही, जिसने हमें बीच में काट दिया।"

आदमी अपना सूटकेस बीच ड्राइंगरूम में घसीट लाया। लड़की उत्सुकता से बैग के भीतर झाँक रही थी- सिगरेट के पैकेट, स्कॉच की लम्बी बोतल, चॉकलेट के बण्डल - वे सारी चीज़ें, जो उसने इतनी हड़बड़ी में फ्रेंकफर्ट के एयरपोर्ट पर ड्यूटी-फ्री की दुकान से खरीदी थी, अब बैग से ऊपर झाँक रही थी।

"तुमने अपने बाल कटवा लिये?" आदमी ने पहली बार चैन से लड़की का चेहरा देखा।

"हाँ" सिर्फ छुट्टियों के लिए। कैसे लगते हैं?"

"अगर तुम मेरी बेटी नहीं होतीं, तो मैं समझता कि कोई लफंगा घर में घुस आया है।''

"ओह पापा !'' लड़की ने हँसते हुए बैग से चॉकलेट निकाली, रैपर खोला, फिर उसके आगे बढ़ा दी।

"स्विस चॉकलेट,'' उसने उसे हवा में डुलाते हुए कहा।

"मेरे लिए एक गिलास पानी ला सकती हो?''

"ठहरो, मैं चाय बनाती हूँ।''

"चाय बाद में....'', वह अपने कोट की अन्दरूनी जेब में कुछ टटोलने लगा - नोटबुक, वालेट, पासपोर्ट- सब चीजें बाहर निकल आयीं, अन्त में उसे टेबलेट्स की डिब्बी मिली, जिसे वह ढूँढ रहा था।

लड़की पानी का गिलास लेकर आयी तो उससे पूछा, "कैसी दवाई है?''

"जर्मन,'' उसने कहा, "बहुत असर करती है।'' उसने टेबलेट पानी के साथ निगल ली, फिर सोफे पर बैठ गया। सबकुछ वैसा ही था, जैसा उसने सोचा था। वही कमरा, शीशे का दरवाजा, खुले हुए परदों के बीच वही चौकोर, हरे रुमाल-जैसा लॉन, टी.वी. के स्क्रीन पर उड़ती पक्षियों की छाया, जो बाहर उड़ते थे और भीतर होने का भ्रम देते थे...।

वह किचन की देहरी पर आया। गैस के चूल्हों के पीछे लड़की की पीठ दिखायी दे रही थी। कार्डराय की काली जीन्स और सफेद कमीज, जिसकी मुड़ी स्लीब्स बाँहों की कुहनियों पर झूल रही थीं। वह बहुत हल्की और छुई-मुई-सी दिखायी दे रही थी।

"मामा कहाँ है?'' उसने पूछा। शायद उसकी आवाज इतनी धीमी थी कि लड़की ने उसे नहीं सुना, किन्तु उसे लगा, जैसे लड़की की गर्दन कुछ ऊपर उठी थी। "मामा क्या ऊपर है?'' उसने दुबारा कहा और लड़की वैसे ही निश्चल खड़ी रही और तब उसे लगा, उसने पहली बार भी उसके प्रश्न को सुन लिया था। "क्या वह बाहर गयी है?'' उसने पूछा। लड़की ने बहुत धीरे, धुँधले ढंग से सिर हिलाया, जिसका मतलब कुछ भी हो सकता था।''

"तुम पापा, कुछ मेरी मदद करोगे?''

वह लपककर किचन में चला आया, "बताओ, क्या काम है?''

"तुम चाय की केतली लेकर भीतर जाओ, मैं अभी आती हूँ।''

"बस! उसने निराश स्वर में कहा।

"अच्छा, प्याले और प्लेटें भी लेते जाओ।''

वह सब चीज़ें लेकर भीतर कमरे में चला आया। वह दुबारा किचन में जाना चाहता था, लेकिन लड़की के डर से वह वहीं सोफा पर बैठा रहा। किचन से कुछ तलने की खुशबू आ रही थी। लड़की उसके लिए कुछ बना रही थी - और वह उसकी कोई भी मदद नहीं कर पा रहा था। एक बार इच्छा हुई, किचन में जाकर उसे मना कर आये कि वह कुछ भी नहीं खायेगा - किन्तु दूसरे ही क्षण भूख ने उसे पकड़ लिया। सुबह से उसने कुछ नहीं खाया था। यूस्टन स्टेशन के कैफेटेरिया में इतनी लम्बी 'क्यू' लगी थी कि वह टिकट लेकर सीधा ट्रेन में घुस गया था। सोचा था, वह डायनिंग-कार में कुछ पेट में डाल लेगा, किन्तु वह दुपहर से पहले नहीं खुलती थी। सच पूछा जाए, तो उसने अन्तिम खाना कल शाम फ्रेंकफर्ट की एयरपोर्ट में खाया था और जब रात को लन्दन पहुँचा था, तो अपने होटल की बॉर में पीता रहा था। तीसरे गिलास के बाद उसने जेब से नोटबुक निकाली, नम्बर देखा और बॉर के टेलीफोन बूथ में जाकर फोन मिलाया था..... पहली बार में पता नहीं चला, उसकी पत्नी की आवाज है या बच्ची की। उसकी पत्नी ने फोन उठाया होगा, क्योंकि कुछ देर तक फोन का सन्नाटा उसके कान में झनझनाया रहा, फिर उसने सुना, वह ऊपर से बच्ची को बुला रही है। और तब उसने घड़ी देखी; उसे अचानक ध्यान आया, इस समय वह सो रही होगी, और वह फोन नीचे रखना चाहता था, किन्तु उसी समय उसे बच्ची का स्वर सुनायी दिया; वह आधी नींद में थी। उसे कुछ देर तक पता ही नहीं चला कि वह इण्डिया से बोल रहा है या फ्रेंकफर्ट से या लन्दन से.... वह उसे अपनी स्थिति समझा ही रहा था कि तीन मिनट खत्म हो गये और उसके पास इतनी 'चेंज' भी नहीं थी कि वह लाइन को कटने से बचा सके, तसल्ली सिर्फ इतनी थी कि वह नींद, घबराहट और नशे के बीच यह बताने में सफल हो गया था कि वह कल उनके शहर पहुँच रहा है...कल यानी आज।

वे अच्छे क्षण थे। बाहर इंग्लैण्ड की पीली और मुलायम धूप फैली थी। वह घर के भीतर था। उसके भीतर गरमाई की लहरें उठने लगी थीं। हवाई अड्डों की भाग-दौड़, होटलों की हील-हुज्जत, ट्रेन-टैक्सियों की हड़बड़ाहट-वह सबसे परे हो गया था। वह घर के भीतर था; उसका अपना घर न सही, फिर भी एक घर-कुर्सियाँ, परदे, सोफा, टी०वी०। वह अर्से से इन चीज़ों के बीच रहा था और हर चीज के इतिहास को जानता था। हर दो-तीन साल बाद जब वह आता था, तो सोचता था -बच्ची कितनी बड़ी हो गयी होगी और पत्नी? वह कितनी बदल गयी होगी ! लेकिन ये चीजें उस दिन से एक जगह ठहरी थीं, जिस दिन उसने घर छोड़ा था; वे उसके साथ जाती थीं, उसके साथ लौट आती थीं....

"पापा, तुमने चाय नहीं डाली?'' वह किचन से दो प्लेटें लेकर आयी, एक में टोस्ट और मक्खन थे, दूसरी में तले हुए सॉसेज।

"मैं तुम्हारा इन्तजार कर रहा था।''

"चाय डालो, नहीं तो बिल्कुल ठण्डी हो जायेगी।''

वह उसके साथ सोफा पर बैठ गयी। "टी.वी. खोल दूँ.... देखोगे?''

"अभी नहीं...सुनो, तुम्हें मेरे स्टैम्प्स मिल गये थे?''

"हाँ, पापा, थैंक्स!'' वह टोस्ट्स पर मक्खन लगा रही थी।

"लेकिन तुमने चिट्ठी एक भी नहीं लिखी !''

"मैंने एक चिट्ठी लिखी थी, लेकिन जब तुम्हारा टेलीग्राम आया, तो मैंने सोचा, अब तुम आ रहे हो तो चिट्ठी भेजने की क्या जरूरत?''

"तुम सचमुच गागा हो।''

लड़की ने उसकी ओर देखा और हँसने लगी। यह उसका चिढ़ाऊ नाम था, जो बाप ने बरसों पहले उसे दिया था, जब वह उसके साथ घर में रहता था, वह बहुत छोटी थी और उसने हिन्दुस्तान का नाम भी नहीं सुना था।

बच्ची की हँसी का फायदा उठाते हुए वह उसके पास झुक आया जैसे वह कोई चंचल चिड़िया हो, जिसे केवल सुरक्षा के भ्रामक क्षण में ही पकड़ा जा सकता है, "मम्मी कब लौटेंगी?''

प्रश्न इतना अचानक था कि लड़की झूठ नहीं बोल सकी, "वह ऊपर अपने कमरे में है।''

"ऊपर? लेकिन तुमने तो कहा था ....'

किरच, किरच, किरच- वह चाकू से जले हुए टोस्ट को कुरेद रही थी मानो उसके साथ-साथ वह उसके प्रश्न को भी काट डालना चाहती हो। हँसी अब भी थी, लेकिन अब वह बर्फ में जमे कीड़े की तरह उसके होंठों पर चिपकी थी।

"क्या उन्हें मालूम है कि मैं यहाँ हूँ?''

लड़की ने टोस्ट पर मक्खन लगाया, फिर जैम-फिर उसके आगे प्लेट रख दी।

"हाँ मालूम है।'' उसने कहा।

"क्या वह नीचे आकर हमारे साथ चाय नहीं पियेंगी ?''

लड़की दूसरी प्लेट पर सॉसेज सजाने लगी - फिर उसे कुछ याद आया। वह रसोई में गयी और अपने साथ मस्टर्ड और कैचुप की बोतलें ले आयी।

"मैं ऊपर जाकर पूछ आता हूँ।'' उसने लड़की की तरफ देखा, जैसे उससे अपनी कार्यवाही का समर्थन पाना चाहता हो। जब वह कुछ नहीं बोली, तो वह जीने की तरफ जाने लगा।

"प्लीज़ पापा।''

उसके पाँव ठिठक गये।

"आप फिर उनसे लड़ना चाहते हैं ?'' लड़की ने कुछ गुस्से में उसे देखा।

"लड़ना !'' वह शर्म से भीगा हुआ हँसने लगा, "मैं यहाँ दो हजार मील उनसे लड़ने आया हूँ?''

"फिर आप मेरे पास बैठिए।'' लड़की का स्वर भरा हुआ था। वह अपनी माँ के साथ थी, लेकिन बाप के प्रति क्रूर नहीं थी। वह उसे पुरचाती निगाहों से निहार रही थी - "मैं तुम्हारे पास हूँ, क्या यह काफी नहीं है?''

वह खाने लगा, टोस्ट, सॉसेज, टिन के उबले हुए मटर। उसकी भूख उड़ गयी थी, लेकिन लड़की की आँखें उस पर थी। वह उसे देख रही थी, और कुछ सोच रही थी, कभी-कभी टोस्ट का टुकड़ा मुँह में डाल लेती और फिर चाय पीने लगती। फिर उसकी ओर देखती और चुपचाप मुस्कराने लगती, उसे दिलासा-सी देती, सब कुछ ठीक है, तुम्हारी जिम्मेदारी मुझ पर है और जब तक मैं हूँ, डरने की कोई बात नहीं।

डर नहीं था। टेबलेट का असर रहा होगा या यात्रा की थकान - वह कुछ देर के लिए लड़की की निगाहों से हटना चाहता था। वह अपने को हटाना चाहता था। "मैं अभी आता हूँ।'' उसने कहा। लड़की ने सशंकित आँखों से उसे देखा, "क्या बाथरूम जायेंगे?'' वह उसके साथ-साथ गुसलखाने तक चली आयी और जब उसने दरवाजा बन्द कर लिया, तो भी उसे लगता रहा, वह दरवाजे के पीछे खड़ी है....

उसने बेसिनी में अपना मुँह डाल दिया और नल खोल दिया। पानी झर-झर उसके चेहरे पर बहने लगा - और वह सिसकने-सा लगा, आधे बने हुए शब्द उसकी छाती के खोखल से बाहर निकलने लगे, जैसे भीतर जमी हुई कोई उलट रहा हो, उलटी, जो सीधी दिल से बाहर आती

है - वह टेबलेट जो कुछ देर पहले खाई थी, अब पीले चूरे-सी बेसिनी के संगमरमर पर फैल रही थी। फिर उसने नल बन्द कर दिया और रुमाल निकालकर मुँह पोंछा। बाथरूम की खूँटी पर स्त्री के मैले कपड़े टँगे थे - प्लास्टिक की चौड़ी बाल्टी में अण्डरवियर और ब्रेसियर साबुन में डूबे थे...खिड़की खुली थी और बाग का पिछवाड़ा धूप में चमक रहा था। कहीं किसी दूसरे बाग से घास काटने की उनींदी-सी घुर्र-घुर्र पास आ रही थी....

वह जल्दी से बाथरूम का दरवाजा बन्द करके कमरे में चला गया। सारे घर में सन्नाटा था। वह किचन में आया, तो लड़की दिखायी नहीं दी। वह ड्राइंगरूप में लौटा, तो वह भी खाली पड़ा था। उसे संदेह हुआ कि वह ऊपरवाले कमरे में अपनी माँ के पास बैठी है। एक अजीब आतंक ने उसे पकड़ लिया। घर जितना शान्त था, उतना ही खतरे से अटा जान पड़ा। वह कोने में गया, जहाँ उसका सूटकेस रखा था, वह जल्दी-जल्दी उसे खोलने लगा। उसने अपने कान्फ्रेंस के नोट्स और कागज अलग किये, उनके नीचे से वह सारा सामान निकालने लगा, जो वह दिल्ली से अपने साथ लाया था - एम्पोरियम का राजस्थानी लहँगा (लड़की के लिए), ताँबे और पीतल के ट्रिंकेट्स, जो उसने जनपथ पर तिब्बती लामा हिप्पियों से खरीदे थे, पशमीनें का कश्मीरी शाल (बच्ची की माँ के लिए), एक लाल, गुजराती जरीदार स्लीपर, जिसे बच्ची और माँ दोनों पहन सकते थे, हैण्डलूम के बैडकवर, हिन्दुस्तानी टिकटों की अल्बम - और एक बहुत बड़ी सचित्र किताब, 'बनारस : द एटर्नल सिटी।' फर्श पर धीरे-धीरे एक छोटा-सा हिन्दुस्तान जमा हो गया था, जिसे वह हर बार यूरोप आते समय अपने साथ ढो लाता था।

सहसा उसके हाथ ठिठक गये। वह कुछ देर तक चीज़ों के ढेर को देखता रहा। कमरे के फर्श पर बिखरी हुई वे बिल्कुल अनाथ और दयनीय दिखायी दे रही थीं। एक पागल-सी इच्छा हुई कि वह उन्हें कमरे में जैसे का तैसा छोड़कर भाग खड़ा हो। किसी को पता भी न चलेगा, वह कहाँ चला गया? लड़की थोड़ा-जरूर हैरान होगी, किन्तु बरसों से वह उससे ऐसे ही अचानक मिलती रही थी और बिना कारण बिछड़ती रही थी, 'यू आर ए कमिंग मैन एण्ड ए गोइंग मैन', वह उससे कहा करती थी, पहले विषाद में और बाद में कुछ-कुछ हँसी में....

उसे कमरे में न बैठा देखकर लड़की को ज्यादा सदमा नहीं पहुँचेगा। वह ऊपर जायेगी और माँ से कहेगी, "अब तुम नीचे आ सकती हो ; वह चले गये।" फिर वे दोनों एक-साथ नीचे आयेंगी। उन्हें राहत मिलेगी कि अब उन दोनों के अलावा घर में कोई नहीं है।

"पापा !"

वह चौंक गया, जैसे रँगे हाथों पकड़ा गया हो। खिसियानी-सी मुस्कराहट में लड़की को देखा - वह कमरे की चौखट पर खड़ी थी और खुले हुए सूटकेस को ऐसे देख रही थी, जैसे वह कोई जादू की पिटारी हो, जिसने अपने पेट से अचानक रंग-बिरंगी चीज़ों को उगल दिया हो। लेकिन उसकी आँखों में कोई खुशी नहीं थी ; एक शर्म-सी थी, जब बच्चे अपने बड़ों को कोई ऐसी ट्रिक करते हुए देखते हैं जिसका भेद उन्हें पहले से मालूम होता है ; वे अपने संकोच को छिपाने के लिए कुछ ज्यादा ही उत्सुक हो जाते हैं।

"इतनी चीजें ?'' वह आदमी के सामने कुर्सी पर बैठ गयी, "कैसे लाने दीं? सुना है आजकल कस्टमवाले बहुत तंग करते हैं।''

"नहीं, इस बार उन्होंने कुछ नहीं किया,'' आदमी ने उत्साह में आकर कहा, "शायद इसलिए कि मैं सीधे फ्रेंकफर्ट से आ रहा था। उन्हें सिर्फ एक चीज़ पर शक हुआ था।'' उसने मुस्कराते हुए लड़की की ओर देखा।

"किस चीज पर ?'' लड़की ने इस बार सच्ची उत्सुकता से पूछा।

उसने अपने बैग से दालबीजी का डिब्बा निकाला और उसे खोलकर मेज पर रख दिया। लड़की ने झिझकते हुए दो-चार दाने उठाये और उन्हें सूँघने लगी, "क्या है यह?'' उसने जिज्ञासा से आदमी को देखा।

"वे भी इसी तरह सूँघ रहे थे,'' वह हँसने लगा, "उन्हें डर था कि कहीं इसमें चरस-गाँजा तो नहीं है।''

"हैश?'' लड़की की आँखें फैल गयीं, "क्या इसमें सचमुच हैश मिली है?''

"खाकर देखो।''

लड़की ने कुछ दालमोठ मुँह में डाले और उन्हें चबाने लगी, फिर हलाट-सी होकर सी-सी करने लगी।

"मिर्चें होंगी -थूक दो !'' आदमी ने कुछ घबराकर कहा।

किन्तु लड़की ने उन्हें निगल दिया और छलछलाई आँखों से बाप को देखने लगी।

"तुम भी पागल हो... सब निगल बैठी।'' आदमी ने जल्दी से उसे पानी का गिलास दिया, जो वह उसके लिए लायी थी।

"मुझे पसन्द है।'' लड़की ने जल्दी से पानी पिया और अपनी कमीज की मुड़ी हुई बाँहों से आँखें पोंछने लगी। फिर मुस्कराते हुए आदमी की ओर देखा, "आई लव इट।'' वह कई बातें सिर्फ आदमी का मन रखने के लिए करती थी। उनके बीच बहुत कम मुहलत रहती थी और वह उनके पहुँचने के लिए ऐसे शार्टकट लेती थी, जिसे दूसरे बच्चे महीनों में पार करते हैं।

"क्या उन्होंने भी उसे चखकर देखा था ?'' लड़की ने पूछा।

"नहीं, उनमें इतनी हिम्मत कहाँ थी। उन्होंने सिर्फ मेरा सूटकेस खोला, मेरे कागजों को उलटा-पलटा और जब उन्हें पता चला कि मैं कान्फ्रेंस से आ रहा हूँ तो उन्होंने कहा, 'मिस्टर, यू मे गो।' ''

"क्या कहा उन्होंने ?'' लड़की हँस रही थी।

"उन्होंने कहा, 'मिस्टर यू मे गो, लाइक एन इण्डियन क्रो!' आदमी ने भेदभरी निगाहों से उसे देखा। 'क्या है यह ?' ''

लड़की हँसती रही - जब वह बहुत छोटी थी और आदमी के साथ पार्क में घूमने जाती थी, तो वे यह सिरफिरा खेल खेलते थे। वह पेड़ की ओर देखकर पूछता था, ओ डियर, इज़ देयर एनीथिंग टू सी ? और लड़की चारों तरफ देखकर कहती थी, येस डियर, देयर इज़ ए क्रो ओवर द ट्री। आदमी विस्मय से उसकी ओर देखता। क्या है यह ? और वह विजयोल्लास में कहती -पोयम !

ए पोयम ! बढ़ती हुई उम्र में छूटते हुए बचपन की छाया सरक आयी - पार्क की हवा, पेड़, हँसी। वह बाप की उँगली पकड़कर सहसा एक ऐसी जगह आ गयी, जिसे वह मुद्दत पहले छोड़ चुकी थी, जो कभी-कभार रात को सोते हुए सपनों में दिखायी दे जाती थी....

"मैं तुम्हारे लिए कुछ इण्डियन सिक्के लाया था.... तुमने पिछली बार कहा था न !''

दिखाओ, कहाँ हैं ?'' लड़की ने कुछ जरूरत से ज्यादा ही ललकते हुए पूछा।

आदमी ने सलमे-सितारों से लड़ी एक लाल थैली उठायी- जिसे हिप्पी लोग अपने पासपोर्ट के लिए खरीदते थे। लड़की ने उसे उसके हाथ से छीन लिया और हवा में झुलाने लगी। भीतर रखी चवन्नियाँ, अठन्नियाँ, चहचहाने लगीं, फिर उसने थैली का मुँह खोला और सारे पैसों को मेज पर बिखेर दिया।

"हिन्दुस्तान में क्या सब लोगों के पास ऐसे ही सिक्के होते हैं ?''

वह हँसने लगा, "और क्या सबके लिए अलग-अलग बनेंगे ?'' उसने कहा।

"लेकिन गरीब लोग ?'' उसने आदमी को देखा, "मैंने एक रात टी.वी. में उन्हें देखा था. ..।'' वह सिक्कों को भूल गयी और कुछ असमंजस में फर्श पर बिखरी चीज़ों को देखने लगी। तब पहली बार आदमी को लगा - वह लड़की जो उसके सामने बैठी है, कोई दूसरी है। पहचान का फ्रेम वही है जो उसने दो साल पहले देखा था लेकिन बीच की तस्वीर बदल गयी है। किन्तु वह बदली नहीं थी, वह सिर्फ कहीं चली गयी थी। वे माँ-बाप जो अपने बच्चों के साथ हमेशा नहीं रहते, उन गोपनीय मंजिलों के बारे में कुछ नहीं जानते जो उनके अभाव की नींव पर ऊपर-ही-ऊपर बनती रहती है, लड़की अपने बचपन की बेसमेण्ट में जाकर ही पिता से मिल पाती थी.... लेकिन कभी-कभी उसे छोड़कर दूसरे कमरों में चली जाती थी, जिसके बारे में आदमी को कुछ भी मालूम नहीं था।

"पापा !'' लड़की ने उसकी ओर देखा, "क्या मैं इन चीज़ों को समेटकर रख दूँ?''

"क्यों, इतनी जल्दी क्या है ?''

"नहीं, जल्दी नहीं,...लेकिन मामा आकर देखेंगी तो....! उसके स्वर में हल्की-सी घबराहट थी, जैसे वह हवा में किसी अदृश्य खतरे को सूँघ रही हो।

"आयेंगी तो क्या ?'' आदमी ने कुछ विस्मय से लड़की को देखा।

"पापा, धीरे बोलो...! लड़की ने ऊपर कमरे की तरफ देखा, ऊपर सन्नाटा था, जैसे घर की एक देह हो, दो में बँटी हुई, जिसका एक हिस्सा सुन्न और निस्पन्द पड़ा हो, दूसरे में वे दोनों बैठे थे। और तब उसे भ्रम हुआ कि लड़की कोई कठपुतली का नाटक कर रही है। ऊपर के धागे से बँधी हुई, जैसे वह खिंचता है, वैसे वह हिलती है, लेकिन वह न धागे को देख सकता है, न उसे, जो उसे हिलाता है....

वह उठ खड़ा हुआ। लड़की ने आतंकित होकर उसे देखा, "आप कहाँ जा रहे हैं ?

"वह नीचे नहीं आयेंगी ?'' उसने पूछा।

"उन्हें मालूम है, आप यहाँ हैं।'' लड़की ने कुछ खीजकर कहा।

"इसीलिए वह नहीं आना चाहतीं ?''

"नहीं ....! लड़की ने कहा, "इसीलिए वह कभी भी आ सकती हैं।''

कैसे पागल हैं। इतनी छोटी-सी बात नहीं समझ सकते। "आप बैठिए, मैं अभी इन सब चीजों को समेट लेती हूँ।''

वह फर्श पर उकड़ूँ बैठ गयी; बड़ी सफाई से हर चीज को उठाकर कोने में रखने लगी। मखमल की जूती, पशमीने की शाल, गुजरात एम्पोरियम का बैडकवर। उसकी पीठ पिता की ओर थी, किन्तु वह उसके हाथ देख सकता था, पतले और साँवले, बिल्कुल अपनी माँ की तरह, वैसे ही निस्संग और ठण्डे, जो उसकी लायी चीजों को आत्मीयता से पकड़ते नहीं थे, सिर्फ अनमने भाव से अलग ठेल देते थे। वे एक ऐसी बच्ची के हाथ थे, जिसने सिर्फ माँ के सीमित और सुरक्षित स्नेह को छूना सीखा था, मर्द के उत्सुक और पीड़ित उन्माद को नहीं जो पिता के सेक्स की काली कन्दरा से उमड़ता हुआ बाहर आता है।

अचानक लड़की के हाथ ठिठक गये। उसे लगा, कोई दरवाजे की घण्टी बजा रहा है लेकिन दूसरे ही क्षण फोन का ध्यान आया जो जीने के नीचे कोटर में था और जंजीर से बँधे पिल्ले की तरह जोर-जोर से चीख रहा था। लड़की ने चीज़ें वैसे ही छोड़ दीं और लपकते हुए सीढ़ियों के पास गयी, फोन उठाया, एक क्षण तक कुछ सुनायी नहीं दिया। फिर वह चिल्लायी -

"मामा, आपका फोन !''

बच्ची बेनिस्टर के सहारे खड़ी थी, हाथ में फोन झुलाती हुई। ऊपर का दरवाजा खुला और जीना हिलने लगा। कोई नीचे आ रहा था, फिर एक सिर लड़की के चेहरे पर झुका, गुँथा हुआ जूड़ा और फोन के बीच एक पूरा चेहरा उभर आया....

"किसका है ?'' औरत ने अपने लटकते हुए जूड़े को पीछे धकेल दिया और लड़की के हाथ से फोन छीन लिया। आदमी कुर्सी से उठा...लड़की ने उसकी ओर देखा। 'हैलो,'' औरत ने कहा। "हलो, हलो,'' औरत की आवाज ऊपर उठी और तब उसे पता चला, कि वह उस स्त्री की आवाज है, जो उसकी पत्नी थी ; वह उसे बरसों बाद भी सैकड़ों आवाजों की भीड़ में पहचान सकता था... ऊँची पिच पर हल्के-से काँपती हुई, हमेशा से सख्त, आहत, परेशान, उसकी देह की एकमात्र चीज, जो देह से परे आदमी की आत्मा पर खून की खरोंच खींच जाती थी.... वह जैसे उठा था, वैसे ही बैठ गया।

लड़की मुस्करा रही थी।

वह हैंगर के आईने से आदमी का चेहरा देख रही थी - और वह चेहरा कुछ वैसा ही बेडौल दिखायी दे रहा था जैसे उम्र के आईने से औरत की आवाज - उल्टा, टेढ़ा, पहेली-सा रहस्यमय ! वे तीनों व्यक्ति अनजाने में चार में बँट गये थे - लड़की, उसकी माँ, वह और उसकी पत्नी । घर जब गृहस्थी में बदलता है, तो अपने-आप फैलता जाता है.....

"तुम जेनी से बात करोगी ?'' औरत ने लड़की से कहा और बच्ची जैसे इसी क्षण की प्रतीक्षा कर रही थी। वह उछलकर ऊपरी सीढ़ी पर आयी और माँ से टेलीफोन ले लिया, "हलो जेनी, इट इज़ मी !''

वह दो सीढ़ियाँ नीचे उतरी ; अब आदमी उसे पूरा-का-पूरा देख सकता था।

"बैठो...,'' आदमी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। उसके स्वर में एक बेबस-सा अनुनय था, मानो उसे डर हो कि कहीं उसे देखकर वह उल्टे पाँव न लौट जाये।

वह एक क्षण अनिश्चय में खड़ी रही। अब वापस मुड़ना निरर्थक था, लेकिन इस तरह उसके सामने खड़े रहने का भी कोई तुक नहीं था। वह स्टूल खींचकर टी.वी. के आगे बैठ गयी।

"कब आये ?'' उसका स्वर इतना धीमा था कि आदमी को लगा, टेलीफोन पर कोई दूसरी औरत बोल रही थी।

"काफी देर हो गयी... मुझे तो पता भी न था कि तुम ऊपर कमरे में हो !''

स्त्री चुपचाप उसे देखती रही।

आदमी ने जेब से रुमाल निकाला, पसीना पोंछा, मुस्कराने की कोशिश में मुस्कराने लगा। "मैं बहुत देर तक बाहर खड़ा रहा, मुझे पता नहीं था, घण्टी खराब है ! गैराज खाली पड़ा था, मैंने सोचा, तुम दोनों कहीं बाहर गये हो... तुम्हारी कार ?'' उसे मालूम था, फिर भी उसने पूछा।

"सर्विसिंग के लिए गयी है !'' स्त्री ने कहा। वह हमेशा से उसकी छोटी, बेकार की बातों से नफरत करती आयी थी, जबकि आदमी के लिए वे कुछ ऐसे तिनके थे, जिन्हें पकड़कर डूबने से बचा जा सकता था। कम-से-कम कुछ देर के लिए....

"तुम्हें मेरा टेलीग्राम मिल गया था ? मैं फ्रेंकफर्ट आया था, उसी टिकट पर यहाँ आ गया; कुछ पौण्ड ज्यादा देने पड़े। मैंने तुम्हें वहाँ से फोन भी किया, लेकिन तुम दोनों कहीं बाहर थे...''

"कब ?'' औरत ने हल्की जिज्ञासा से उसकी ओर देखा, "हम दोनों घर में थे।''

"घण्टी बज रही थी, लेकिन किसी ने उठाया नहीं। हो सकता था, आपरेटर मेरी अंग्रेजी नहीं समझ सकी और गलत नम्बर दे दिया हो ! लेकिन सुनो।'' वह हँसने लगा, "एक अजीब बात हुई। हीथ्रो पर मुझे एक औरत मिली, जो पीछे से बिल्कुल तुम्हारी तरह दिखायी दे रही थी,

यह तो अच्छा हुआ मैंने उसे बुलाया नहीं.... हिन्दुस्तान के बाहर हिन्दुस्तानी औरतें एक-जैसी ही दिखायी देती हैं...।'' वह बोले जा रहा था। वह उस आदमी की तरह था जो आँखों पर पट्टी बाँधकर हवा में तनी हुई रस्सी पर चलता है, स्त्री कहीं बहुत नीचे थे, एक सपने में, जिसे वह बहुत पहले कभी जानता था, किन्तु अब उसे याद नहीं आ रहा था कि वह उसके सामने क्यों बैठा था?

वह चुप हो गया। उसे ख्याल आया, इतनी देर से वह सिर्फ अपनी आवाज सुन रहा है, उसके सामने बैठी स्त्री बिल्कुल चुप बैठी थी। उसकी ओर बहुत ठण्डी और हताश निगाहों से देख रही थी।

"क्या बात है?'' आदमी ने कुछ भयभीत-सा होकर पूछा।

"मैंने तुमसे मना किया था; तुम समझते क्यों नहीं?''

"किसके लिए? मेरे घर तुम ये सब चीजें क्यों लाते हो; क्या फायदा है इनका?''

पहले क्षण वह नहीं समझा कौन-सी चीजें? फिर उसकी निगाहें फर्श पर गयीं.... शान्ति-निकेतन का पर्स, डाक टिकटों का अल्बम, दालबीजी का डिब्बा-वे अब बिल्कुल लुटी-पिटी दिखायी दे रही थी, जैसे वह कुर्सी पर बैठा हुआ वैसी वे फर्श पर बिखरी हुई। "कौन-सी ज्यादा है?'' उसने खिसियाते हुए कहा, "इन्हें न लाता तो आधा सूटकेस खाली पड़ा रहता।''

"लेकिन मैं तुमसे कुछ नहीं चाहती...तुम क्या इतनी-सी बात नहीं समझ सकते?''

स्त्री की आवाज काँपती हुई ऊपर उठी, जिसके पीछे न जाने कितनी लड़ाइयों की पीड़ा, कितने नरकों का पानी भरा था, जो बाँध टूटते ही उसके पास आने लगा, एक-एक इंच आगे बढ़ता हुआ। उसने जेब से रूमाल निकाला और अपने लथपथ चेहरे को पोंछने लगा।

"क्या तुम्हें इतनी देर के लिए आना भी बुरा लगता है?''

"हाँ..।'' उसका चेहरा तन गया, फिर अजीब हताशा में वह ढ़ीली पड़ गयी, "मैं तुम्हें देखना नहीं चाहती-बस!''

क्या यह इतना आसान है ! वह जिद्दी लड़के की तरह उसे देखने लगा, जो सवाल समझ लेने के बाद भी बहाना करता है कि उसे कुछ समझ में नहीं आया। "वुक्कू !'' उसने धीरे से कहा, "प्लीज़!''

"मुझे माफ करो...। "औरत ने कहा।

"तुम चाहती क्या हो?''

"लीव मी अलोन....। इससे ज्यादा मैं कुछ और नहीं चाहती।''

"मैं बच्ची से भी मिलने नहीं आ सकता?''

"इस घर में नहीं, तुम उससे कहीं बाहर मिल सकते हो?''

"बाहर !'' आदमी ने हकबकाकर सिर उठाया, "बाहर कहाँ?''

उस क्षण वह भूल गया कि बाहर सारी दुनिया फैली है, पार्क, सड़कें, होटल के कमरे-उसका अपना संसार-बच्ची कहाँ-कहाँ उसके साथ घिसटेगी?

वह फोन पर हँस रही थी। कुछ कह रही थी- "नहीं, आज मैं नहीं आ सकती। डैडी घर में हैं, अभी-अभी आ रहे हैं...नहीं, मुझे मालूम नहीं। मैंने पूछा नहीं....।'' क्या नहीं मालूम? शायद उसकी सहेली ने पूछा था, वह कितने दिन रहेगा? सामने बैठी स्त्री भी शायद यह जानना चाहती थी, कितना समय, कितनी घड़ियाँ, कितनी यातना अभी और उसके साथ भोगनी पड़ेगी?

शाम की आखिरी धूप भीतर आ रही थी। टी.वी. का स्क्रीन चमक रहा था, लेकिन वह खाली था और उसमें सिर्फ स्त्री की छाया बैठी थी, जैसे खबरें शुरु होने से पहले एनाउंस की छवि दिखायी देती है, पहले कमज़ोर और धुँधली, फिर धीरे-धीरे 'ब्राइट' होती हुई...वह साँस रोके प्रतीक्षा कर रहा था कि वह कुछ कहेगी हालाँकि उसे मालूम था कि पिछले वर्षों में सिर्फ एक न्यूज-रील है जो हर बार मिलने पर एक पुरानी पीड़ा का टेप खोलने लगती है, जिसका सम्बन्ध किसी दूसरी जिन्दगी से है....चीजें और आदमी कितनी अलग है ! बरसों बाद भी घर, किताबें, कमरे वैसे ही रहते हैं, जैसा तुम छोड़ गये थे; लेकिन लोग? वे उसी दिन से मरने लगते हैं, जिस दिन से अलग हो जाते हैं....मरते नहीं, एक दूसरी जिन्दगी जीने लगते हैं, जो धीरे-धीरे उस जिन्दगी का गला घोंट देती हैं, जो तुमने साथ गुजारी थी...

"मैं सिर्फ बच्ची से नहीं...'' वह हकलाने लगा, "मैं तुमसे भी मिलने आया था।''

"मुझसे?'' औरत के चेहरे पर हँसी, हिकारत, हैरानी एकसाथ उमड़ आयी, "तुम्हारी झूठ की आदत अभी तक नहीं गयी !''

"तुमसे झूठ बोलकर अब मुझे क्या मिलेगा?''

"मालूम नहीं, तुम्हें क्या मिलेगा-मुझे जो मिला है, उसे मैं भोग रही हूँ।'' उसने एक ठहरी ठण्डी निगाह से बाहर देखा। "मुझे अगर तुम्हारे बारे में पहले से ही कुछ मालूम होता, तो मैं कुछ कर सकती थी।''

"क्या कर सकती थी?'' एक ठण्डी-सी झुरझुरी ने आदमी को पकड़ लिया।

"कुछ भी। मैं तुम्हारी तरह अकेली नहीं रह सकती; लेकिन अब इस उम्र में...अब कोई मुझे देखता भी नहीं।''

"वुक्कू...'' उसने हाथ पकड़ लिया।

"मेरा नाम मत लो...वह सब खत्म हो गया।''

वह रो रही थी; बिल्कुल निस्संग, जिसका गुजरे हुए आदमी और आनेवाली उम्मीद-दोनों से कोई सरोकार नहीं था। आँसू, जो एक कारण से नहीं, पूरा पत्थर हट जाने से आते हैं, एक ढलुआ जिन्दगी पर नाले की तरह बहते हुए; औरत बार-बार उन्हें अपने हाथ से झटक देती थी....

बच्ची कब से फोन के पास चुप बैठी थी। वह जीने की सबसे निचली सीढ़ी पर बैठी थी और सूखी आँखों से रोती माँ को देख रही थी। उसके सब प्रयत्न निष्फल हो गये थे, किन्तु उसके चेहरे पर निराशा नहीं थी। हर परिवार के अपने दु:स्वप्न होते हैं जो एक अनवरत पहिये में घूमते हैं; वह उसमें हाथ नहीं डालती थी। इतनी कम उम्र में वह इतना बड़ा सत्य जान गयी थी कि मनुष्य के मन और बाहर की सृष्टि में एक अद्‌भुत समानता है - वह जब तक अपना चक्कर पूरा नहीं कर लेते, उन्हें बीच में रोकना बेमानी है.....।

वह बिना आदमी को देखे माँ के पास गयी; कुछ कहा, जो उसके लिए नहीं था। औरत ने उसे अपने पास बिठा लिया, बिल्कुल अपने से सटाकर। काऊच पर बैठी वे दोनों दो बहनों-सी लग रही थीं। वे उसे भूल गयी थीं। कुछ देर पहले जो ज्वार उठा था,उसमें घर डूब गया था लेकिन अब पानी वापस लौट गया था और अब आदमी वहाँ था, जहाँ उसे होना चाहिए था - किनारे पर। उसे यह ईश्वर का वरदान-जैसा जान पड़ा; वह दोनों के बीच बैठा है -अदृश्य ! बरसों से उसकी यह साध रही थी कि वह माँ और बेटी के बीच अदृश्य बैठा रहे। सिर्फ ईश्वर ही अपनी दया में अदृश्य होता है - यह उसे मालूम था। किन्तु जो आदमी गढ़हे की सबसे निचली सतह पर जीता है, उसे भी कोई नहीं देख सकता। माँ और बच्ची ने उसे अलग छोड़ दिया था; यह उसकी उपेक्षा नहीं थी। उसकी तरफ से मुँह मोड़कर उन्होंने उसे अपने पर छोड़ दिया था - ठीक वहीं - जहाँ उसने बरसों पहले घर छोड़ था।

लड़की माँ को छोड़कर उसके पास आकर बैठ गयी।

"हमारा बाग देखने चलोगे?'' उसने कहा।

"अभी?'' उसने कुछ विस्मय से लड़की को देखा। वह कुछ अधीर और उतावली-सी दिखायी दे रही थी, जैसे वह उससे कुछ कहना चाहती हो, जिसे कमरे के भीतर कहना असम्भव हो।

"चलो,'' आदमी ने उठते हुए कहा, "लेकिन पहले इन चीजों को ऊपर ले जाओ।''

"हम इन्हें बाद में समेट लेंगे।''

"बाद में कब?'' आदमी ने कुछ सशंकित होकर पूछा।

"आप चलिए तो !'' लड़की ने लगभग उसे घसीटते हुए कहा।

"इनसे कहो अपना सामान सूटकेस में रख लें।'' स्त्री की आवाज सुनायी दी।

उसे लगा, किसी ने अचानक पीछे से धक्का दिया हो। वह चमककर पीछे मुड़ा, "क्यों?''

"मुझे इनकी कोई जरूरत नहीं है।''

उसके भीतर एक लपलपाता अन्धड़ उठने लगा, "मैं नहीं ले जाऊँगा, तुम चाहो तो इन्हें बाहर फेंक सकती हो।''

"बाहर?'' स्त्री की आवाज थरथरा रही थी; गालों का गीलापन सूखे काँच-सा जम गया था, जो पोंछे हुए नहीं, सूखे हुए आँसुओं से उभरकर आता है।

"क्या हम बाग देखने नहीं चलेंगे?'' बच्ची ने उसका हाथ खींचा - और वह उसके साथ चलने लगा। वह कुछ भी नहीं देख रहा था। घास, क्यारियाँ और पेड़ एक गूँगी फिल्म की तरह चल रहे थे। सिर्फ उसकी पत्नी की आवाज एक भुतैली कमेण्ट्री की तरह गूँज रही थी - बाहर, बाहर !

"आप मम्मी के साथ बहस क्यों करते हैं?'' लड़की ने कहा।

"मैंने बहस कहाँ की?'' उसने बच्ची को देखा - जैसे वह भी उसकी दुश्मन हो।

"आप करते हैं।'' लड़की का स्वर अजीब-सा हठीला हो गया था। वह अंग्रेजी में 'यू' कहती थी, जिसका मतलब प्यार में 'तुम' होता था और नाराजगी में 'आप'। अंग्रेजी सर्वनाम की यह सन्दिग्धता बाप-बेटी के रिश्ते को हवा में टाँगे रहती थी, कभी बहुत

पास, कभी बहुत पराया - जिसका सही अन्दाज उसे सिर्फ लड़की की टोन में टटोलना पड़ता था। एक अजीब-से भय ने आदमी को पकड़ लिया। वह एक ही समय में माँ और बच्ची दोनों को नहीं खोना चाहता था।

"बड़ा प्यारा बाग़ है,'' उसने फुसलाते हुए कहा, "क्या माली आता है?''

"नहीं, माली नहीं।'' लड़की ने उत्साह से कहा, "मैं शाम को पानी देती हूँ और छुट्टी के दिन ममी घास काटती है... इधर आओ, मैं तुम्हें एक चीज़ दिखाती हूँ।''

वह उसके पीछे चलने लगा। लॉन बहुत छोटा था - हरा, पीला, मखमली! पीछे गैराज था और दोनों तरफ झाड़ियों की फेंस लगी थी। बीच में एक घना, बूढ़ा, विलो खड़ा था। लड़की पेड़ के पीछे छिप-सी गयी,

फिर उसकी आवाज सुनायी दी, "कहाँ हो तुम?''

वह चुपचाप, दबे पाँवों से पेड़ के पीछे चला आया और हैरान-सा खड़ा रहा। विलो और फेंस के बीच काली लकड़ी का बाड़ा था, जिसके दरवाजे से एक खरगोश बाहर झाँक रहा था; दूसरा खरगोश लड़की की गोद में था। वह उसे ऐसे सहला रही थी, जैसे वह ऊन का गोला हो, जो कभी भी हाथ से छूटकर झाड़ियों में गुम हो जायेगा।

"ये हमने अभी पाले हैं.... पहले दो थे, अब चार।''

"बाकी कहाँ हैं?''

"बाड़े के भीतर'' वे अभी बहुत छोटे हैं।

पहले उसका मन भी खरगोश को छूने के लिए हुआ, किन्तु उसका हाथ अपने-आप बच्ची के सिर पर चला गया और वह धीरे-धीरे उसके भूरे, छोटे बालों से खेलने लगा। लड़की चुप खड़ी रही और खरगोश अपनी नाक सिकोड़ता हुआ उसकी ओर ताक रहा था।

"पापा?'' लड़की ने बिना सिर उठाये धीरे-से कहा, "क्या आपने डे-रिटर्न का टिकट लिया है''

"नहीं ; क्यों?''

"ऐसे ही; यहाँ वापसी टिकट बहुत सस्ता मिल जाता है।''

क्या उसने यही पूछने के लिए उसे यहाँ बुलाया था? उसने धीरे-से अपना हाथ लड़की के सिर से हटा लिया।

"आप रात को कहाँ रहेंगे?'' लड़की का स्वर बिल्कुल भावहीन था।

"अगर मैं यहीं रहूँ तो?''

लड़की ने धीरे-से खरगोश को बाड़े में रख दिया और खट-से दरवाजा बन्द कर दिया।

"मैं हँसी कर रहा था,'' उसने हँसकर कहा, "मैं आखिरी ट्रेन से लौट जाऊँगा।''

लड़की ने मुड़कर उसकी ओर देखा, "यहाँ दो-तीन अच्छे होटल भी हैं....। मैं अभी फोन करके पूछ लेती हूँ।'' बच्ची का स्वर बहुत कोमल हो आया। यह जानते ही कि वह रात को घर में नहीं ठहरेगा,वह माँ से हटकर आदमी के साथ हो गयी; धीरे-से उसका हाथ पकड़ा, उसे वैसे ही सहलाने लगी, जैसे अभी कुछ देर पहले खरगोश को सहला रही थी। लेकिन आदमी का हाथ पसीने से तरबतर था।

"सुनो, मैं अगली छुट्टियों में इण्डिया आऊँगी-इस बार पक्का है।''

उसे कुछ आश्चर्य हुआ कि आदमी ने कुछ नहीं कहा; सिर्फ बाड़े में खरगोशों की खटर-पटर सुनायी दे रही थी।

"पापा....तुम कुछ बोलते क्यो नहीं?''

"तुम हर साल यही कहती हो।''

"कहती हूँ.... लेकिन इस बार मैं आऊँगी, डोण्ट यू बीलीव मी?''

"भीतर चलें? ममी हैरान हो रही होंगी कि हम कहाँ रह गये।''

अगस्त का अँधेरा चुपचाप चला आया था। हवा में विलो की पत्तियाँ सरसरा रही थीं। कमरों के परदे गिरा दिये गये थे, लेकिन रसोई का दरवाजा खुला था। लड़की भागते हुए भीतर गयी और सिंक का नल खोलकर हाथ धोने लगी। वह उसके पीछे आकर खड़ा हो गया; सिंक के ऊपर आईने में उसने अपना चेहरा देखा - रूखी गर्द और बढ़ी हुई दाढ़ी और सुर्ख आँखों के बीच उसकी ओर हैरत में ताकता हुआ - नहीं, तुम्हारे लिए कोई उम्मीद नहीं....

"पापा, क्या तुम अब भी अपने-आपसे बोलते हो?'' लड़की ने पानी में भीगा अपना चेहरा उठाया - वह शीशे में उसे देख रही थी।

"हाँ, लेकिन अब मुझे कोई सुनता नहीं...।'' उसने धारे-से बच्ची के कन्धे पर हाथ रखा, "क्या फ्रिज में सोडा होगा?''

"तुम भीतर चलो, मैं अभी लाती हूँ?''

कमरे में कोई न था। उसकी चीजें बटोर दी गयी थीं। सूटकेस कोने में खड़ा था; जब वे बाग में थे, उसकी पत्नी ने शायद उन सब चीज़ों को देखा होगा; उन्हें छुआ होगा। वह उससे चाहे कितनी नाराज क्यों न हो - चीज़ों की बात अलग थी। वह उन्हें ऊपर नहीं ले गयी थी, लेकिन दुबारा सूटकेस में डालने की हिम्मत नहीं की थी... उसने उन्हें अपने भाग्य पर छोड़ दिया था।

कुछ देर बाद जब बच्ची सोडा और गिलास लेकर आयी, तो उसे सहसा पता नहीं चला कि वह कहाँ बैठा है। कमरे में अँधेरा था - पूरा अँधेरा नहीं - सिर्फ इतना जिसमें कमरे में बैठा आदमी चीज़ों के बीच चीज़-जैसा दिखायी देता है, "पापा.... तुमने बत्ती नहीं जलायी?''

"अभी जलाता हूँ...।'' वह उठा और स्विच को ढूँढ़ने लगा, बच्ची ने सोडा और गिलास मेज पर रख दिया और टेबुल लैम्प जला दिया।

"ममी कहाँ है?''

"वह नहा रही है, अभी आती होंगी।''

उसने अपने बैग से व्हिस्की निकाली, जो उसने फ्रेंकफर्ट के एयरपोर्ट पर खरीदी थी.... गिलास में डालते हुए उसके हाथ ठिठक गये, "तुम्हारी जिंजर-एल कहाँ है?''

"मैं अब असली बीयर पीती हूँ।'' लड़की ने हँसकर उसकी ओर देखा, "तुम्हें बर्फ चाहिए?''

"नहीं.... लेकिन तुम जा कहाँ रही हो?''

"बाड़े में खाना डालने... नहीं तो वे एक-दूसरे को मार खायेंगे।''

वह बाहर गयी तो खुले दरवाजे से बाग का अँधेरा दिखायी दिया - तारों की पीली तलछट में झिलमिलाता हुआ। हवा नहीं थी। बाहर का सन्नाटा घर की अदृश्य आवाजों के भीतर से छनकर आता था। उसे लगा, वह अपने घर में बैठा है और जो कभी बरसों पहले होता था, वह अब हो रहा हैं। वह शॉवर के नीचे गुनगुनाती रहती थी और जब वह बालों पर तौलिया साफे की तरह बाँधकर बाहर निकली थी, तब पानी की बूँदे बाथरूम से लेकर उसके कमरे तक एक लकीर बनाती जाती थीं - पता नहीं वह लकीर कहाँ बीच में सूख गयी? कौन-सी

जगह, किस खास मोड़ पर वह चीज हाथ से छूट गयी, जिसे वह कभी दुबारा नहीं पकड़ सका?

उसने कुछ और व्हिस्की डाली ; हालाँकि गिलास अभी खाली नहीं हुआ था। उसे कुछ अजीब लगा कि पिछली रात भी यही घड़ी थी जब वह पी रहा था; लेकिन तब वह हवा में था। जब उसे एयर-होस्टेज की आवाज सुनायी दी कि हम चैनल पार कर रहे हैं तो उसने हवाई जहाज की खिड़की से नीचे देखा -कुछ भी दिखायी न देता था - न समुद्र, न लाइट हाउस, सिर्फ अँधेरा, अँधेरे में बहता हुआ अँधेरा - फिर कुछ भी नहीं। और तब नीचे अँधेरे में झाँकते हुए उसे ख्याल आया कि वह चैनल जो नीचे कहीं दिखायी नहीं देता था, असल में कहीं भीतर है - उसकी एक जिन्दगी से दूसरी जिन्दगी तक फैला हुआ; जिसे वह हमेशा पार करता रहेगा, कभी इधर, कभी उधर, कहीं का भी नहीं, न कहीं से आता हुआ, न कहीं पहुँचता हुआ.... ।

'बिन्दु कहाँ है?'' उसने चौंककर ऊपर देखा, वह वहाँ कब से खड़ी थी, उसे पता नहीं चला था। ''बाहर बाग में,''उसने कहा, ''खरगोशों को खाना देने।''

वह अलग खड़ी थी, बेनिस्टर के नीचे। नहाने के बाद उसने एक लम्बी मैक्सी पहन ली थी. ..। बाल खुले थे। चेहरा बहुत धुला और चमकीला-सा लग रहा था। वह मेज पर रखे उसके गिलास को देख रही थी। उसका चेहरा शान्त था; शॉवर ने जैसे न केवल उसे गिलास को, बल्कि उसके सन्ताप को भी धो डाला था।

''बर्फ भी रखी है।'' उसने कहा।

''नहीं, मैंने सोडा ले लिया; तुम्हारे लिए एक बना दूँ?''

उसने सिर हिलाया, जिसका मतलब कुछ भी था; उसे मालूम था कि गर्म पानी से नहाने के बाद उसे कुछ ठण्डा पीना अच्छा लगता था। अर्से बाद भी वह उसकी आदतें नहीं भूला था, बल्कि उन आदतों के सहारे ही दोनों के बीच पुरानी पहचान लौट आती थी। वह रसोई में गया और उसके लिए एक गिलास ले आया। उसमें थोड़ी-सी बर्फ डाली। जब व्हिस्की मिलाने लगा, तो उसकी आवाज सुनायी दी - ''बस, इतनी काफी है।''

वह धुली हुई आवाज थी, जिसमें कोई रंग नहीं था, न स्नेह का, न नाराजगी का - एक शान्त और तटस्थ आवाज। वह सीढ़ियों से हटकर कुर्सी के पास चली आयी थी।

''तुम बैठोगी नहीं?'' उसने कुछ चिन्तित होकर पूछा।

उसने अपना गिलास उठाया और वहीं स्टूल पर बैठ गयी, जहाँ दुपहर को बैठी थी। टी.वी. के पास लेकिन टेबुल लैम्प से दूर - जहाँ सिर्फ रोशनी की एक पतली-सी झाँई उस तक पहुँच रही थी।

कुछ देर तक दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला, फिर स्त्री की आवाज सुनाई दी, "घर में सब लोग कैसे हैं?"

"ठीक हैं... ये सब चीज़ें उन्होंने ही भेजी हैं।"

"मुझे मालूम है," औरत ने कुछ थके स्वर में कहा, "क्यों उन बेचारों को तंग करते हो? तुम ढो-ढोकर इन चीजों को लाते हो और वे यहाँ बेकार पड़ी रहती हैं।"

"वे यही कर सकते हैं, " उसने कहा, "तुम बरसों से वहाँ गयी नहीं; वे बहुत याद करते हैं।"

"अब जाने का कोई फायदा है?" उसने गिलास से लम्बा घूँट लिया, "मेरा अब उनसे कोई रिश्ता नहीं।"

"तुम बच्ची के साथ तो आ सकती हो, उसने अभी तक हिन्दुस्तान नहीं देखा।"

वह कुछ देर चुप रही... फिर धीरे-से कहा, "अगले साल वह चौदह वर्ष की हो जायेगी.... कानून के मुताबिक तब वह कहीं भी जा सकती हैं"

"मैं कानून की बात नहीं कर रहा; तुम्हारे बिना वह कहीं जायेगी।"

स्त्री ने गिलास की भीगी सतह से आदमी को देखा, "मेरा बस चले तो उसे वहाँ कभी न भेजूँ।"

"क्यों?" आदमी ने उसकी ओर देखा।

वह धीरे-से हँसी, "क्या हम दो हिन्दुस्तानी उसके लिए काफी नहीं है?"

वह बैठा रहा। कुछ देर बाद रसोई का दरवाजा खुला, लड़की भीतर आयी, चुपचाप दोनों को देखा और फिर जीने के पास चली गयी, जहाँ टेलीफोन रखा था।

"किसे कर रही हो?" औरत ने पूछा।

लड़की चुप रही, फोन का डायल घुमाने लगी।

आदमी उठा, उसकी ओर देखा, "थोड़ा-सा और लोगी''

"नहीं....।'' उसने सिर हिलाया। आदमी धीरे-धीरे अपने गिलास में डालने लगा।

"क्या बहुत पीने लगे हो?'' औरत ने कहा।

"नहीं...।'' आदमी ने सिर हिलाया, "सफर में कुछ ज्यादा ही हो जाता है।''

"मैंने सोचा था अब तक तुमने घर बसा लिया होगा।''

"कैसे ?'' उसने स्त्री को देखा, "तुम्हें यह कैसे भ्रम हुआ?''

औरत कुछ देर तक नीरव आँखों से उसे देखती रही, "क्यों, उस लड़की का क्या हुआ? वह तुम्हारे साथ नहीं रहती?'' स्त्री के स्वर में कोई उत्तेजना नहीं थी, न क्लेश की कोई छाया थी... जैसे दो व्यक्ति मुद्दत बाद किसी ऐसी घटना की चर्चा कर रहे हों जिसने एक झटके से दोनों को अलग छोरों पर फेंक दिया था।

"मैं अकेला रहता हूँ... माँ के साथ।'' उसने कहा।

औरत ने तनिक विस्मय से उसे देखा, "क्या बात हुई?''

"कुछ नहीं... मैं शायद साथ रहने के काबिल नहीं हूँ।'' उसका स्वर असाधारण रूप से धीमा हो आया, जैसे वह उसे अपनी किसी गुप्त बीमारी के बारे में बता रहा हो, "तुम हैरान हो? लेकिन ऐसे लोग होते हैं....'' वह कुछ और कहना चाहता था, प्रेम के बारे में, वफादारी के बारे में, विश्वास और धोखे के बारे में; कोई बड़ा सत्य, जो बहुत-से झूठों से मिलकर बनता है, व्हिस्की की धुन्ध में बिजली की तरह कौंधता है और दूसरे क्षण हमेशा के लिए अँधेरे में लोप हो जाता है....
लड़की शायद इस क्षण की ही प्रतीक्षा कर रही थी; वह टेलीफोन से उठकर आदमी के पास आयी, एक बार माँ को देखा, वह टेबुल-लैम्प के पीछे अँधेरे के आधे कोने में छिप गयी थी, और आदमी? वह गिलास के पीछे सिर्फ एक डबडबाता-सा धब्बा बनकर रह गया था।

"पापा,'' लड़की के हाथ में कागज का पुर्जा था, "यह होटल का नाम है, टैक्सी तुम्हें सिर्फ दस मिनट में पहुँचा देगी।''

उसने लड़की को अपने पास खींच लिया और कागज जेब में रख लिया। कुछ देर तक तीनों चुप बैठे रहे, जैसे बरसों पहले यात्रा पर निकलने से पहले घर के सब प्राणी

एकसाथ सिमटकर चुप बैठ जाते थे। बाहर बहुत-से तारे निकल आये थे, जिसमें बूढ़ी विलो, झाड़ियाँ और खरगोशों का बाड़ा एक निस्पन्द पीले आलोक में पास-पास सरक आये थे।

उसने अपना गिलास मेज़ पर रखा, फिर धीरे-से लड़की को चूमा, अपना सूटकेस उठाया और जब लड़की ने दरवाजा खोला, तो वह क्षण-भर देहरी पर ठिठक गया, "मैं चलता हूँ।" उसने कहा। पता नहीं, यह बात उसने किससे कही थी, किन्तु जहाँ वह बैठी थी, वहाँ से कोई आवाज नहीं आयी। वहाँ उतनी ही घनी चुप्पी थी, जितनी बाहर अँधेरे में, जहाँ वह जा रहा था।